International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

कथाकार भगवानदास मोरवाल कृत 'रेत' उपन्यास में कंजर जनजाति का लोक–व्यवहार एवं संस्कृति

डॉ. नांग सुलिना चाउतांग

TGT (हिन्दी),पासीघाट ईस्ट सियांग, अरुणाचल प्रदेश

सारांश

हिन्दी में 'जनजाति' शब्द के पर्याय में 'आदिम जाति', 'आदिवासी', 'कबीला', 'मूलनिवासी' आदि शब्दों का प्रचलन है। जनजाति मानव समुदायों का एक ऐसा संगठन है, जिनकी विशिष्ट संस्कृति और समान परम्पराएं होती है, जो प्रायः एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में सामान्य विशेषताओं को अपनाये हुए चली आ रही होती है। जनजाति स्थायी और अस्थायी रूप से परिवार–समूहों से उठकर एक राजनीतिक संगठन होता है, जिनकी समान भाषा, समान संस्कृति और समान विचारधारा या आदर्श होते हैं। आदर्श रूप में, आमतौर पर जनजाति के सदस्यों द्वारा एक विशिष्ट नाम स्वीकृत किया जाता है। वे निश्चित प्रदेश में निवास करते हुए व्यापार, कृषि, घर निर्माण, युद्ध और अन्य औपचारिक गतिविधियों में सामूहिक रूप से कार्य करते हैं। जीविका उपार्जन के लिए जितना आवश्यक है, उतना ही उत्पादन करने की क्षमता रखने वाले जनसमूहों को आदिवासी या जनजाति कहा जाता है। 'जनजाति' शब्द के सामाजिक वर्ग की अवधारणा आदिम मानव के समूहों के रूप में होती है। जिनकी अपनी विशिष्ट परम्पराएं और सांस्कृतिक विरासत रही है। जिसका विकास प्रत्येक जनजाति में पीढ़ी–दर–पीढ़ी होता रहा है। प्रस्तुत आलेख में भगवानदास मोरवाल कृत 'रेत' उपन्यास में कंजर जनजाति के लोक–व्यवहार एवं संस्कृति पर प्रकाश डाला गया है।

प्रमुख शब्द– लोक–व्यवहार, सांस्कृतिक विरासत, आंचलिक जीवन, 'कंजर' जनजाति।

परिचय

बीसवीं सदी के अंतिम दशक के प्रमुख कथाकार भगवानदास मोरवाल ने दोआबा क्षेत्र के आंचलिक जीवन की समस्याओं को पूरे देश की समस्याओं से जोड़ते हुए 'काला पहाड़' और 'बाबुल तेरा देश में' जैसे उपन्यासों का सर्जन किया है। इसी क्रम में सन् 2008 में प्रकाशित उनका तीसरा उपन्यास 'रेत' इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इस उपन्यास में रचनाकार ने कथा सर्जन की दृष्टि से भारत की सबसे उपेक्षित एवं जरायम पेशे से जुड़ी 'कंजर' जनजाति को आधार बनाया है। इस जनजाति में स्त्रियों की प्रमुखता रही है और

पुरुष की स्थिति गौण है। ''इनकी जिन्दगी दूसरों के लिए मुट्ठी में रेत की तरह हो सकती है, पर स्वयं उनके लिए नहीं। वे अपनी जिंदगी को तेज रफ्तार से चलाकर आंधी भी बन सकती हैं और उससे किसी को तबाह भी कर सकती हैं।''[1] 'कंजर' एक ऐसा समाज है जहां परिवार की स्त्रियों का वेश्यावृत्ति करना गलत नहीं समझा जाता। जो स्त्रियां इस तरह का पेशा करती हैं वे खिलावड़ी कहलाती हैं और उनकी हैसियत परिवार में विवाहित स्त्रियों से श्रेष्ठ होती है। जो स्त्रियां वेश्यावृत्ति नहीं अपनाती, उन्हें 'भाभी' कहा जाता है। इनके परिवार में 'भाभी' की स्थिति दोयम दर्जे की होती है। 'रेत' उपन्यास के बारे में विजय बहादुर सिंह लिखते हैं, ''युवा कथाकार भगवानदास मोरवाल अपने इस तीसरे उपन्यास में एक नये अनुभव–क्षेत्र में आ खड़े हुए हैं जिसे समकालीन निगाह से दलित–जीवन का संवेदना–क्षेत्र कहा जाएगा। अधिक विशिष्ट कथन करना पड़े तो ऐसा निर्वासित और कलंकित जीवन–समूह स्वयं को सभ्य माननेवालों के लिए, जिसका पास–पड़ोस भी असहनीय, निंदनीय और खतरनाक माना जाता है। हिन्दी उपन्यास ने इस तिरस्कृत बस्ती में पहुंचकर अपनी जो जागरुक उपस्थिति दर्ज की है, उससे कथा–लेखन की संवेदना–क्षेत्र का विस्तार तो हुआ ही है, हिन्दी कथा–साहित्य की सोच और अनुभवों की दृष्ट से अधिक समृद्ध भी हुआ है। अनुभवों का यह नया क्षेत्र उस कंजर जीवन–समूह का है जिसका अपना स्वतन्त्र सामाजिक व्याकरण है और जो वर्चस्वी हिन्दू समाज के किसी भी नियम व्यवहार अथवा जीवन–शास्त्र से कैसे भी मेल नहीं खाता। बल्कि दोनों की जीवन मर्यादाएं एक–दूसरे के सर्वथा विपरीत और विरोधी ही हैं। कंजर–समाज में सबसे अधिक दुर्गति उस स्त्री की होती है जो विवाह करती है और 'भाभी' कहलाती है। विपरीत इसके सुखप्रद जीवन उसका है जो 'बुआ' बनती है और देह–व्यापार करती हुई 'खिलावड़ी' (पुलिस की डायरी में 'रजिस्ट्री') कही जाती है। यही औरतें अपने–अपने घरों या कुनबों की असली मालकिनें (स्वामिनिया) मानी जाती हैं क्योंकि देह–व्यापार करके ये ही रोज हजारों का वारा–न्यारा करती हैं और वह सब इनके जीवन का खुला यथार्थ है। भाभियों का यहां न तो कोई भविष्य होता है और न वर्तमान। जीवन–भर 'खिलावड़ी' ननदों, भतीजियों, यहां तक कि बेटियों की सेवा–टहल में लगे रहना और भावी खिलावड़ियों को पैदा करना ही उनका एकमात्र फर्ज और उनके जीवन की उपयोगिता मानी जाती है।''[2]

आलोच्य उपन्यास के केन्द्र में 'कंजर' समाज की 'कन्जरी' कहलाने वाली स्त्रियां है। उपन्यास का मुख्य कथा स्थल गाजूकी में स्थित 'कमला सदन' है। गाजूकी गांव है या शहर इसे लेखक ने स्पष्ट नहीं किया है। बस इतना बताया है कि, ''बस्ती से पुल को जोड़नेवाले छोटे–छोटे धूसर बीहड़, जो सांझ के गहराते झुटपुटे के साथ यहां आनेवाले धूल में लिपटे ट्रक, मारुतियों और मोटर साइकिलों के लिए अभेद्य पनाहगाहों मे बदल जाते हैं। इसी पुल के इस पुराने नेशनल हाई

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

से अपने–आपको जोड़ने वाली सड़क के एक ओर कटोरीवालों का तिबारा, तो थोड़ा आगे जाकर ठीक उसके सामने छोटी–सी हरी चादर से आच्छादित मील भर फैला यह फासला, एक ही नाम के कई हिस्सों में बँटा हुआ है– गाजूकी, गाजूकी नदी और गाजूकी पुल।''[3] गाजुकी के इस परिवेश में 'कमला सदन' पांच सौ वर्ग गज यह फासला, एक ही नाम के कई हिस्सों में बंटा हुआ है गाजूकी, गाजूकी नदी जमीन पर बना मकान है। ''वस्तुतः कमला सदन इस उपन्यास का वह रंगमंच है जिसमें जरायम पेशा कंजर जनजाति की तीन पीढियां शामिल हैं। कमला बुआ इसकी सरगना है सबसे बुजुर्ग पीढ़ी की। उसके बाद उनकी बेटी सुशीला, माया, रुक्मिणी, और नई पीढ़ी की पिंकी, वंदना और पूनम। कंजरों के गांव गाजूकी में कमला सदन एक बड़ी सत्ता है जिसके इर्दगिर्द पुलिस, राजनेता और नवधनाढ्य मंडराते रहते हैं। कमला सदन में राग–रंग का व्यापार शालीनता से चलता रहता है।''[4] कमला बुआ के परिवार में रुक्मिणी, सुशीला, माया, वंदना और पूनम ये सब खिलावड़ियां हैं। घर में सन्तों भाभी विवाहित स्त्री है जिसकी स्थिति नौकरानी से बदतर है। उपन्यास का सूत्रधार पुरुष पात्र वैद्यजी उर्फ घनश्याम 'कृष्ण' है जो कमला सदन का शुभचिंतक है। इन चरित्रों के माध्यम से उपन्यास की कथावस्तु इकत्तीस अध्यायों में विकसित हुई है। पहले के पन्द्रह अध्यायों तक गाजूकी और कमला सदन की 'कन्जरी' स्त्रियों के जीवनानुभव, रहन–सहन, रीति–रिवाज, सुख–दुख, परम्परा, जाति पंचायत, आचार–विचार और उनके सभ्य समाज के राजनेता तथा पुलिस व ग्राहकों से स्थापित सम्बन्धों को उजागर किया गया है। सोलहवें अध्याय से उपन्यास राजनीति और समाज सुधार की दिशा में मोड़ लेता है। 'कमला सदन' की रुक्मिणी नायिका बनकर सामने आती है। इस रुक्मिणी के प्रति उपन्यास का सूत्रधार वैद्यजी भावनात्मक लगाव रखता है। वैद्यजी को एक दिन अवसाद भरे स्वर में रुक्मिणी कहती है, 'वैद्यजी, यह रुक्मिणी तो ऐसी रेत है, जिसे जैसी चाहे हवा अपने साथ उड़ा ले जाए जैसा चाहे पानी बहा ले जाए और तो और जिसके जी में आए अपनी मुट्ठी में कैद कर ले जाए। क्या है इसका अपना, कुछ भी तो नहीं। भला, रेत का भी कोई अपना वजूद होता है?' इसके जबाव में वैद्यजी कहते हैं, ''ऐसी बात नहीं है रुक्मिणी, यह तो अपना–अपना सोचने का ढंग है। मैं कुछ कहूंगा तो तुझे लगेगा मैं कोई उपदेश दे रहा हूं, पर असलियत यह है कि बिना रेत तो क्या हवा, क्या पानी। इनका भी क्या है अपना। रेत बिना कैसे बवंडर, कैसे आंधी और तू कहती है कि रेत का भी भला अपना कोई वजूद होता है।''[5] वैद्यजी के यह विचार धीरे–धीरे रुक्मिणी के जीवन में परिवर्तन की चाहत पैदा करते हैं। 'वह उसके वेश्या जीवन को जीते हुए भी उच्च वर्ग की जातियों द्वारा किए गए शोषण का बदला लेना चाहती है और जीवन में भी बहुत कुछ प्राप्त कर लेना चाहती हैं।'[6] इसके लिए उसे सावित्री मल्होत्रा के द्वारा अवसर प्राप्त होता है। इलाके की राजनीति के मुखिया मुरली

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

बाबू और उनकी सक्रिय कार्यकर्ती सावित्री मल्होत्रा के द्वारा गाजूकी में 'राज्य युवा जनजाति महिला प्रकोष्ठ' की स्थापना की जाती है और रुक्मिणी को अध्यक्ष बनाया जाता है। परन्तु राजनीति में सक्रिय नेता मुरली बाबू, सावित्री बहन और अन्य कार्यकर्ता सभी अपने–अपने ढंग से कंजरों का शोषण करते हैं। सावित्री सामाजिक सुधार के नाम पर कमला सदन की स्त्रियों को देह व्यापार से दूर करती है और मुरली बाबू उन्हें धूप–अगरबत्तियां बेचने का काम देते हैं। कमला सदन की स्त्रियों को राजनीति के चंगुल में फंसाया जाता है। जब वह फंस जाती है तो उनका शारीरिक और राजनैतिक स्तर पर किस तरह से दोहरा शोषण किया जाता है, इसे उपन्यासकार ने बड़ी गम्भीरता से उजागर किया है। दोहरे शोषण से संतप्त हुई कंजर स्त्रियों को रुक्मिणी न्याय दिलाने का कार्य करती है। वह वोट की राजनीति को समझती है और कंजरों का सिर्फ राजनीतिक स्वार्थ के लिए इस्तेमाल करने वालों को उन्हीं के दांव पेचों से पटकनी देकर शोषण से मुक्ति का मार्ग प्रदान करती है। वह चुनाव जीत कर उपमंत्री बन जाती है। उपन्यासकार ने रुक्मिणी के प्रतिनिधित्व में स्त्री चेतना का स्वर, पिछड़ी जनजातियों की संघर्षशीलता और सामाजिक–राजनैतिक सवालों को एक विजन के तहत मुखर किया है।

'रेत' उपन्यास में लेखक ने ''कंजर जनजाति के उस आन्तरिक लोकतन्त्र का चित्रण किया है जिसकी मिसाल सभ्य कहे जानेवाले, कंजरों के अपने मुहावरे में कज्जाओं में भी ढूंढना मुश्किल है। कंजरों में 'मत्था ढकाई' के लिए तैयार होती लड़की को पूरे कुनबे के सामने सप्रेम बुलाकर उससे यह रजामन्दी बाकायदा ली जाती है कि वह 'भाभी' बनना चाहेगी या 'बुआ'।''[7] उपन्यास में यह प्रसंग कमला–सदन की 'भाभी' सन्तों की बेटी पिंकी के द्वारा प्रस्तुत हुआ है। पिंकी काफी संकोच और झिझक दिखाती है और अन्ततः यह घोषणा करती है कि उसे बुआ ही बनना है भाभी नहीं। बेटी के इस फैसले से उसकी मां सन्तों क्षणभर विचलित होकर उसे तमाचे रसीद देती है पर जल्दी ही उसे यह अहसास हो जाता है कि भाभी बनने का जीवन कितना अभिशापपूर्ण है। वह खुद 'भाभी' होने के कठोर विषैले अनुभवों से गुजर चुकी है। आखिर सन्तों भी अपनी बेटी के फैसले को उचित मान लेती है।

''कंजर समाज की संस्कृति और परम्परा की नींव सुदृढ़ है, पंचायत की शर्तें भी। कंजर समाज अपनी संस्कृति की सुरक्षा अपनी अस्मिता के लिए लड़ते हुए ही कर सकता है, उसे मालूम है। जरायम पेशा में आने से पूर्व मत्था ढकाई के कठोर नियम हैं जिसमें बड़ी रकम ली जाती है और उसके बाद ही नई लड़की पेशा कर सकती है।''[8] 'मत्था ढकाई' की रस्म में कंजरों के अपने विधि विधान और नियम कानून है। किसी लड़की की मत्था ढकाई इज्जतदार कज्जा यानी रईस पुरुष से बड़ी रकम लेकर की जाती है। मत्था ढकाई के समय शराब से लेकर रस्म की सारी चीजों का खर्चा इज्जतदार कज्जा यानी रईस पुरुष को करना पड़ता है।

बाद में इसी पुरुष से उस लड़की को आजीवन मुफ्त में सम्बन्ध रखने पड़ते हैं। 'मत्था ढकाई' होने के बाद ही लड़की का खिलावड़ी बनने का मार्ग खुल जाता है। ''मतलब यह कि जो एक बार इस लाइन में डल गई, वह जिन्दगीभर बुआ बनी रहेगी, बयाह नहीं करेगी और जो भाभी बन गई वह धंधा नहीं करेगी।''[9] सुशीला की मत्था ढकाई नंदजी ने की थी। इसके बारे में कमला बुआ बताती है, ''वैद्यजी, हमारे यहां जो इज्जतदार मत्था ढकाई करता है, उमर भर उसका जमाई की तरह मान किया जाता है। एक व्याहता मर्द की तरह अपनी खिलावड़ी के पास आने–जाने की पूरी छूट होती है। उससे कभी पैसे नहीं लिए जाते हैं बल्कि जमाई की तरह पूरे नेग–दस्तूर के साथ उसकी बिदाई दी जाती है। वैसे भी वैजी, मत्था ढकाई जिन्दगी में एक दफे ही होती है। ये समझ ले इस बहाने जमाई के चाव–चोंचले पूरे हो जाते हैं।''[10] इसी 'मत्था ढकाई' की पद्धति और परम्परा को नकारने की ओर अग्रेषित कंजर स्त्रियों की मानसिकता का भी अंकन उपन्यासकार ने किया है। रुक्मिणी कहती है, ''वैजी, मैं नहीं पड़ती है इस झमेले में। अपना तो साफ कहना है कि ग्राहक को ग्राहक ही समझना चाहिए। मैं नहीं पालती इस दामाद–जमाई का टंटा। जिसे शौक है पाले। अरे, यह क्या बात हुई कि एक बार मत्था ढकाई क्या करी, उमर भर उसकी गुलाम हो गई। जब गुलामी ही करनी थी, तो जरूरी था बुआ बनना व्याह रचाके भाभी ना बनती और वैद्यजी, अगर मत्था ढकाई की उसने रकम दी है, तो बदले में मैंने भी उसे अपनी आबरू उसके हवाले की है। किसी ने किसी पर एहसान नहीं किया है।''[11]

कंजर जाति के अपने सामाजिक नियम है, अपने देवी–देवता हैं, अपने उत्सव त्योहार हैं। यहां तक की अपनी कंजर शराब भी है। वे माना गुरु को आदि देवता और मां नलिन्या को आदि देवी मानते हैं, इनके मजार हैं, पीर हैं। लेकिन अपना स्कूल और अपना अस्पताल नहीं हैं। वे विकास की सभ्यता से अभी भी कोसो दूर रहे हैं। उपन्यास में भूरा पीर की मजार, माना गुरु की मढ़ी और कंजरों चारा बनाई गई शराब की पहली तोड़ तो लाजवाब है। 'कंजर' स्त्रियों द्वारा जिंदगी को कठिन घड़ी में अपने कुल देवताओं के व्रत रखकर मन्नते मांगी जाती है। उनमें अपने धंधे में मुनाफा होने तथा नये–नये अमीर कज्जा ग्राहकों की प्राप्ति के लिए धार्मिक अनुष्ठान के तहत कर्मकांड भी किये जाते हैं। भूरा की मजार इसी तरह के अनुष्ठान से बनी हुई है। जहां पर पुत्र प्राप्ति के लिए लोग रात के अंधेरे में सह परिवार जाते रहते हैं। हेमा पंचायत के फैसले के बाद माना गुरु को कृपा मानकर अपने आप को तस्सली देती है। इसी तरह रुक्मिणी भी अपनी शारीरिक बीमारी के दौरान माना गुरु और मां नलिन्या की आराधना करती है। यहां तक की एक–दूसरी कंजरियों के द्वारा आपसी झगड़े और मन–मुटाव के चलते इन्ही देवी–देवताओं की कस्में खाई जाती हैं, दूसरों की बुराइयों के लिए भी मानता मांगी जाती है।

निष्कर्षतः भगवानदास मोरवाल कृत 'रेत' उपन्यास में कंजर जनजाति के लोक संस्कृति एवं लोक व्यवहार का दर्शन सर्वत्र द्रष्टव्य होता है।

संदर्भ सूची–

1. डॉ. वीरेन्द्र सक्सेना, रेत, जो बन गई आंधी (समीक्षा), भाषा (दिमासिक), जनवरी–फरवरी, 2009, अंक–03, पृ. 207, 208
2. विजय बहादुर सिंह, उपन्यास और फार्मूलाबाजी (समीक्षा), नया ज्ञानोदय, अक्तूबर, 2008, अंक–68, पृ. 78
3. भगवानदास मोरवाल, रेत, पृ. 05
4. भारत भारद्वाज, अभिशप्त समाज का दर्द (समीक्षा), इंडिया टुडे, 12–18 जून, 2008, अंक–34, पृ. 57
5. भगवानदास मोरवाल, रेत, पृ. 111
6. डॉ. वीरेन्द्र सक्सेना, रेत, जो बन गई आंधी (समीक्षा), भाषा (द्विमासिक), जनवरी–फरवरी, 2009, अंक–03, पृ. 208
7. विजय बहादुर सिंह, उपन्यास और फार्मूलाबाजी (समीक्षा), नया ज्ञानोदय, अक्तूबर, 2008, अंक–68, पृ. 78
8. भारत भारद्वाज, अभिशप्त समाज का दर्द (समीक्षा), इंडिया टुडे, 12–18 जून, 2008, अंक–34, पृ. 57
9. भगवानदास मोरवाल, रेत, पृ. 22
10. वही, पृ. 27
11. वही, पृ. 93)